षष्ठ अध्याय

स्थापना एवं निष्कर्ष

विलक्षण प्रतिभा के कवि विद्यापति हिन्दी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल के संक्रमणकाल के कवि के रूप में जाने जाते हैं। विवादास्पद होने पर भी अंतःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर विद्यापति का जन्म मिथिला के दरभंगा जिले के अंतर्गत विसपी ग्राम में सन् 1360 ई. के आस-पास माना जाता है। विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर और माता का नाम हंसिनी देवी था। पिता गणपति ठाकुर तत्कालीन राजा गणेश्वर ठाकुर के राज सभासद और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। विद्यापति के वंशज मिथिला के राजदरबार में उच्च पदों पर आसीन थे। कोई राजमंत्री थे, तो कोई राजपण्डित थे। जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने राज्यकार्य में अपनी निपुणता दिखलाई, उसीप्रकार सरस्वती की सेवा में भी वे लगे रहे। जहाँ तक शिक्षा की बात आती है, विद्यापति ने मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान हरिमिश्र से विद्याध्ययन किया था। बचपन से ही तेज विद्यापति ने वेद-पुराणादि, धर्मग्रंथों, दर्शन, न्यायशास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन कर पाण्डित्य हासिल किया। विद्वान वंश परम्परा में जन्म ग्रहण करनेवाले विद्यापति का वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन सुखमय ही व्यतीत हुआ। विद्यापति से तीन पुत्र (वाचस्पति ठाकुर, हरपति ठाकुर, नरपति ठाकुर) और एक पुत्री (दुल्लहि) हुई। पुत्र नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र में परम विद्वान थे, उसीप्रकार पुत्रवधू चंद्रकला भी महापण्डित थी। इस प्रकार पुत्र तथा पुत्रवधू ने परवर्ती समय में भी वंश की ख्याति क़ायम रखी। अद्‌भुत काव्यप्रतिभा के कारण ही विद्यापति को जीवनकाल में ही अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। वे इस प्रकार हैं- अभिनव जयदेव, मैथिल कोकिल, कवि कंठाहार, खेलन कवि, राजपंडित, कविरंजन, कवि शेखर, कविरत्न, दशावधान इत्यादि। विद्यापति का अधिकांश जीवन मिथिला के राजदरबार में ही बीता। राजाश्रित रहकर ही कवि विद्यापति ने धर्म, वीरता, मनोरंजन के साथ सामाजिक पक्ष को भी अपने साहित्यिक कार्यों के माध्यम से प्रकाशित किया। राजाश्रय में रहकर ही विद्यापति ने धन, सम्पत्ति, यश तथा सम्मान प्राप्त किये। विद्यापति की मृत्यु कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सन् 1448 ई. के आसपास मुजफ्फरपुर जिले के गंगा-घाट के समीप हुई थी। मृत्यु के बाद उनकी चिता के स्थान पर एक शिव मंदिर की स्थापना की गई, जो अब भी वहाँ है।

कवि विद्यापति पूर्वजों के संस्कार, वातावरण और अध्यवसाय के बल पर साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए। संस्कृत तत्कालीन भारत की प्रमुख तथा अक्षुण्ण भाषा थी। स्वयं विद्यापति संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान थे। किंतु विद्यापति ने सामान्य जनता को लोकभाषा में लिखित रचनाएँ ही आकृष्ट करती हैं कहकर स्वयं अवहट्ट और मैथिली भाषा में साहित्य सर्जन किया। साथ ही तत्कालीन कवियों की लोकभाषा के प्रति अवहेलना की दृष्टि को एक नई दिशा प्रदान की। मैथिल कोकिल विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषाओं में अपनी साहित्य की रचना कर भारतीय साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की। असाधारण प्रतिभासम्पन्न तथा बहुभाषाविद कवि विद्यापति ने संस्कृत में कुल तेरह ('भूपरिक्रमा', 'पुरुष परीक्षा', 'लिखनावली', 'शैव सर्वस्वसार', 'शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रह', 'गंगावाक्यावली', 'विभागसार', 'दान वाक्यावली', 'दुर्गाभक्तितरंगिनी', 'गयापत्तलक', 'वर्षकृत्य', 'मणिमंजरी', 'गोरक्ष विजय'), अवहट्ट में दो ('कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका') और मैथिली में एक ('पदावली') की रचना की। विद्यापति रचित प्रत्येक रचना का ही अपना निजी महत्त्व है, किंतु पदावली उनकी अक्षय कृति है। मैथिली भाषा में रचित पदावली ही विद्यापति की सर्वप्रसिद्धि के मूल में रही है।

मध्य काल के असम के अन्याय, अनीति तथा अशांतिमय परिवेश में शंकरदेव का जन्म हुआ था। असम के धर्म, समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य के लिए शंकरदेव का प्रादुर्भाव एक उल्लेखनीय घटना रही। शंकरदेव के विषय में प्राप्त अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर यह निश्चित होता है कि उनका जन्म बरदोवा के आलिपुखुरी में सन् 1449 ई. अर्थात् 1371 शक में हुआ था। शंकरदेव के पिता शिरोमणि भूञाँ के वंशज कुसुम्बर भूञाँ और माता सत्यसंध्या थी। शंकरदेव के जन्म के तीन दिन बाद ही माता सत्यसंध्या की और सात वर्ष की अवस्था में पिता कुसुम्बर भूञाँ की मृत्यु हुई थी। इस कारण टुअर शंकर को दादी खेरसुती ने ही पाल-पोष कर बड़ा किया। शंकरदेव उस कायस्थ चंडीबरगिरि के वंशज थे, जो गौड़राज धर्मनारायण ने कमताराज दुर्लभनारायण को संधि अनुसार सात ब्राह्मण और सात कायस्थ परिवारों को अपने राज्य से उन्हें भेंट की थी। कायस्थ चंडीबरगिरि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बाद में राजा दुर्लभनारायण ने उन्हें शिरोमणि भूञाँ नियुक्त किया था। बारह वर्ष शंकरदेव ने खेल-कूद में बीता दी। तब

चिंतित दादी खेरसुती ने भाद्र महीने के एक गुरुवार को शुभ क्षण देखकर महेन्द्र कंदलि के टोल में विद्यार्जन के लिए पोता शंकर को ले गई। टोल में गुरु से केवल स्वरवर्ण और व्यंजनवर्ण सीखकर ही शंकरदेव ने अपनी अदभुत प्रतिभा का परिचय 'करतल कमल कमलदल नयन' नामक कविता की रचना करके दी। शंकरदेव को 'देव' उपाधि उनके असाधारण प्रतिभा को देख उनके गुरु ने दी थी। इस नाम से ही वे आज भी जाने जाते हैं। शंकरदेव अध्यवसायी थे। वे व्याकरण, कोश, पुराण, रामायण, महाभारत, चारों वेद, चौदह शास्त्र, काव्य, इतिहास इत्यादि का अध्ययन कर महामंडित बने थे। योगशास्त्र में भी वे निपुण थे। अतः शंकरदेव ज्ञानी, अध्यवसायी, योगशास्त्र में निपुण बहुमुखी प्रतिभामण्डित व्यक्ति थे। शिक्षा पूर्ण करने पर शंकरदेव का पहला विवाह हरिवरगिरि भूञाँ की कन्या सूर्यवती से संपन्न हुआ। किंतु मनु नामक कन्या को जन्म देकर ही सूर्यवती परलोकगामी हुई। शंकरदेव का दूसरा विवाह उनके पहली बार देशाटन से लौटने पर आत्मीय स्वजनों ने कालिका भूञाँ की कन्या कालिन्दी देवी से करा दिया। कालिन्दी देवी से उन्हें-रामानंद, कमललोचन, हरिचरण और रुक्मिणी नामक चार संतानें हुईं। शंकरदेव एक आदर्श गृहस्थ थे। किंतु सांसारिक बंधन में बंधने के बावजूद वे लोकहितार्थ वैष्णव भक्ति के प्रचार का कार्य तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्य में जुटे रहे। इसीकारण असमीया जनमानस में वे महापुरुष, सर्वागुणाकार, जगतगुरु आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। शंकरदेव के कर्मजीवन को शब्दों में आँकना सरल कार्य नहीं है। शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत ही शंकरदेव ने 'शिरोमणि भूञाँ' का दायित्यभार संभाला। पैतृक विषय राज्यकार्य को संतुलित रूप से निर्वाह करने के साथ सामाजिक कल्याण कार्य और आध्यात्मिक चिंता चर्चा भी शंकरदेव ने समानांतर ही जारी रखा। वर्ग-भेद, नारी उत्थान तथा समन्वयवाद पर शंकरदेव ने बल दिया। अपने साथियों के साथ किये गये दो बार के देशाटन से शंकरदेव के ज्ञान, विचारधारा पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। तत्कालीन भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने विशाल भारतीय आत्मा को विष्णु-कृष्ण की विराटता एवं सर्वशक्तिमान रूप में पहचाना और वे असम में नववैष्णव धर्म का प्रवर्तन कर एकशरण हरिनाम धर्म का प्रचार करने लगे। अशांतिमय और संघर्षशील कर्मजीवन में शंकरदेव प्रारम्भ में बरदोवा, फिर धुँवाहाटा और अंत में पाटबाउसी में निवास करते रहे। उन्होंने जनहितार्थ नामघरों तथा सत्रों की स्थापना की, विभिन्न वाद्ययंत्रों का निर्माण किया तथा भाउना का प्रदर्शन कर वाद्य-नृत्य-अभिनय कौशल पर जोड़ देकर असमीया लोगों

को इसके प्रति ध्यानाकर्षित किया। साथ ही उन्होंने असमीया संस्कृति का नवोत्थान भी किया। जीवन के अंतिम समय में शंकरदेव कोचबिहार में रहने लगे थे। तभी शरीर के एक अंग विशेष में निकले एक फोड़ा की असहनीय पीड़ा के कारण सन् 1568 ई. के सितम्बर या 1490 शक भाद्र शुक्ल सप्तमी के गुरुवार के दिन प्रायः एक सौ बीस वर्ष की आयु में शंकरदेव का कोचबिहार में देहावसान हुआ था।

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न शंकरदेव केवल धर्मप्रचारक ही नहीं, वे एक ही साथ कवि, गद्यकार, चित्रकार, नाट्यकार, संगीतकार, वाद्यकार, अनुवादक, अभिनेता तथा समाज के हितचिंतक थे। नववैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार तथा असमीया समाज का हितोद्धार के उद्देश्य को सफल करने हेतु उन्होंने अपने साहित्य को माध्यम बनाया। अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर विपुल साहित्य सम्भार की रचना कर असमीया साहित्य का भंडार समृद्ध किया। तत्कालीन भारत की तरह असम में भी संस्कृत भाषा का ही वर्चस्व था। किंतु संस्कृत सामान्य जनता के लिए बोधगम्य न होने की स्थिति को शंकरदेव ने भलीभाँति समझा और असमीया में साहित्य सर्जन कर महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया। साथ ही असमीया शब्दावली के आधार पर निर्मित साहित्यिक ब्रजावली (ब्रजबुलि) भाषा में बरगीत और नाटक लिखकर राष्ट्रीय भावबोध को क़ायम रखते हुए भारत को जोड़ने का भी प्रयास किया। शंकरदेव के साहित्य भण्डार को भाषिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं- असमीया, ब्रजावली और संस्कृत। असमीया में- 'भक्ति प्रदीप', 'हरिश्चन्द्र उपाख्यान', 'रुक्मिणीहरण काव्य', 'गुणमाला', 'भागवत (अनुदित)', 'उत्तराकाण्ड रामायण' एवं 'कीर्तन-घोषा' हैं। ब्रजावली में- 'बरगीत' और छः नाटक ('पत्नीप्रसाद नाट', 'कालि-दमन नाट', 'केलिगोपाल नाट', 'रुक्मिणीहरण नाट', 'पारिजात हरण' एवं 'रामविजय') और संस्कृत में- 'भक्ति रत्नाकर', 'टोटय' और 'भटिमा' की रचना की। शंकरदेव द्वारा रचित सभी कृतियाँ अपना निजी महत्त्व रखती हैं। किंतु कीर्तन-घोषा शंकरदेव की अमर कृति है। असमीया साहित्य तथा असम के भक्तवत्सल समाज में 'कीर्तन-घोषा' का स्थान अप्रतिम तथा अद्वितीय है।

संस्कारी ब्राह्मण वंश में जन्मे, दरबारी कवि तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित महाकवि विद्यापति जनभाषा मैथिली में जो पद समय-समय पर गाते रहे, उसी का संग्रहीत रूप पदावली है। जीवनकाल में ही

विद्यापति को ख्याति तथा लोकप्रियता भरपूर मात्रा में मिली, जिसका प्रमुख श्रेय उनकी एकमात्र अक्षय कृति पदावली है। पदावली के पदों का संकलन कार्य अब तक अनेक विद्वानों तथा संकलनकर्ताओं द्वारा हो चुका है। कुछ प्राचीन पदावलियों का आधार विद्यापति की पदावली के सम्पादन कार्य में विशेष महत्त्व रखता है। जहाँ तक पदावली की पदों की संख्या का प्रश्न है, उसका निश्चित उत्तर दे पाना दुरूह कार्य है। ग्रियर्सन के बाद डॉ. नगेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापति की पदावली में 935 पदों का संकलन किया है। गुप्त के बाद सबसे प्रामाणिक खगेन्द्रनाथ मिश्र और बिमानबिहारी मजुमदार ने 939 पद प्रकाशित किए। मिश्र और मजुमदार ने अपने ग्रंथ में विद्यापति की पदावली के रूप में गुप्त के 935 पदों के 203 पदों को छोड़कर 207 नये पद जोड़ दिए। वैसे गुप्त मान्य 935 पदों के साथ यदि मिश्र-मजुमदार के 207 नये पद जोड़े जाए तो इसकी संख्या 1142 होती है। बिहार राष्ट्र परिषद द्वारा विद्यापति की पदावली का प्रकाशन योजना एक सफल तथा उल्लेखनीय कार्य है, जिनमें दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इस आधार पर भी पदावली की संख्या लगभग 1142 ही ठहरती है। कथ्य की दृष्टि से अध्ययन विवेचन करने पर हमें विद्यापति की पदावली में एकसूत्रता नहीं मिलती। राजकवि तथा राजसभासद कवि विद्यापति राजदरबार के विलासितापूर्ण वातावरण के साथ-साथ युगीन परिस्थितियों से भी प्रभावित थे। युग प्रेरित संघर्षों और परस्पर विरोधी मान्यताओं के प्रचलन के कारण विद्यापति के व्यक्तित्व में जो परस्पर विरोधी भावनाओं का एकत्रीकरण मिलता है, वह उनके साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है। विद्यापति की पदावली मुक्तक रचना है, तथ्य की दृष्टि से इसे मूलतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है- भक्ति विषयक, शृंगार विषयक और विविध विषयक। पदावली के भक्ति विषयक पदों में अन्यान्य देव-देवियों की वंदना, स्तुति, प्रार्थना, नचारियाँ तथा विनय के पद आते हैं। विद्यापति ने अपनी पदावली में शृंगार का सर्वांगपूर्ण चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त विविध विषयक पदों के अंतर्गत प्रहेलिका, युद्ध, कुट इत्यादि का चित्रण भी आपने किया है। शिल्प की दृष्टि से अध्ययन विवेचन करने पर हम कह सकते हैं कि विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्यापति की रचना उत्कृष्ट शब्द-विन्यास, भाषा, अलंकार योजना, भावानुकूल छंद योजना, प्रसंगानुकूल प्रतीक योजना, संगीतात्मकता आदि सभी दृष्टियों से उच्चकोटि की प्रमाणित होती है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, संस्कृत के निष्णात पण्डित तथा नववैष्णव धर्म के प्रवर्तक प्रचारक महापुरुष शंकरदेव की अक्षय कृति है-'कीर्तन-घोषा'। एकशरण हरिनाम धर्म प्रचार हेतु समय-समय पर शंकरदेव ने जनभाषा असमीया में जिन घोषा गीतों की रचना की, उन्हीं का संकलित रूप 'कीर्तन-घोषा' है। शंकरदेव के देहावसान के बाद उनके प्रिय शिष्य माधवदेव ने उनके भांजे रामचरण ठाकुर के द्वारा 'कीर्तन-घोषा' का संकलन कार्य को सम्पन्न किया। 'कीर्तन-घोषा' को सत्रों और नामघरों की सीमा से निकालकर भक्त समाज के साथ ही साहित्य प्रेमियों के मध्य पहली बार लाया गया था। सन् 1876 ई. में, हरिविलास आगरवाला ने सम्पादित कर 'कीर्तन-घोषा' का प्रकाशन किया था। उनके बाद कई सम्पादकों तथा संघों द्वारा 'कीर्तन-घोषा' का सम्पादन कार्य हो चुका है। कथ्य की दृष्टि से 'कीर्तन-घोषा' का अध्ययन विवेचन कर हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत कृति मूलतः कथात्मक भक्तिकाव्य है। 'कीर्तन-घोषा' में कुल 30 खण्ड हैं और इसके प्रत्येक खण्ड की अपनी-अपनी कथ्य हैं। अंतिम दो खण्ड- 'घुनुचा कीर्तन' और 'रुक्मिणीर प्रेम-कलह' को लेकर विवाद है। इसलिए इन दो खण्डों को परिशिष्ट में रखा गया है। 'कीर्तन-घोषा' 30 खण्डों के अंतर्गत 195 कीर्तन हैं। शंकरदेव ने 'कीर्तन-घोषा' में 'कृष्णंतु भगवान स्वयम' की प्रतिष्ठा कर कलिकाल में नाम धर्म को ही युगधर्म और हरिनाम को सभी पापों से मुक्ति का उपाय बताया है। कथ्य या विषय-वस्तु की दृष्टि से 'कीर्तन-घोषा' को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं-लीला प्रधान प्रार्थना विषयक, लीलाहीन प्रार्थना विषयक और अन्य कथा या तीर्थ विषयक। प्रस्तुत कृति में अवतार तत्व, वेदांत-दर्शन, दास्य-भाव, सत्संग महिमा, माया से उद्धार हेतु भक्ति की प्रयोजनीयता, भगवान का भक्तवत्सल रूप, शिशु कृष्ण की बाल-लीला, अजामिल जैसे पापी का उद्धार इत्यादि विषय निहित हैं। शिल्प की दृष्टि से भी 'कीर्तन-घोषा' शंकरदेव की अक्षय कृति है। शंकरदेव की सर्वाधिक लोकप्रिय कृति 'कीर्तन-घोषा' साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से भी अन्यतम है। उत्कृष्ट भाषा तथा शब्द-विन्यास, सटीक अलंकार योजना, सफल प्रतीकात्मकता, भावानुकूल छंद योजना तथा संगीतात्मकता की दृष्टि आदि सभी दृष्टियों से 'कीर्तन-घोषा' की रचना उत्कृष्ट रूप में हुई है।

महामहोपाध्याय कवि शिरोमणि विद्यापति ने तत्कालीन राजदरबारी वातावरण में रहने के बावजूद अपनी अमर कृति पदावली में भक्ति विषयक पद लिखकर भक्ति भावना का चित्रण किया है।

पदावली में कृष्ण वंदना, राधा वंदना, शिव स्तुति, शक्ति तथा भैरवी की स्तुति-वंदना, गंगा स्तुति, जानकी वंदना कर इन सभी के प्रति विद्यापति ने भक्ति प्रदर्शित की है। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यापति ने बहुदेवोपासना की है। सख्य भक्ति के अलावा नवधा भक्ति के अन्य सभी रूपों का चित्रण पदावली में मिलता है। अर्चन, वंदन, पादसेवन, दास्य, आत्मनिवेदन आदि का चित्रण पदावली में निश्चित रूप में हुआ है। विद्यापति के जीवन के अंतकाल में लिखे गए कृष्ण कीर्तन आदि में दास्य भक्ति के उत्कृष्ट निदर्शन मिलता है। नवधा भक्ति के साथ ही अपरूप के कवि विद्यापति ने पदावली में माधुर्य भक्ति का भी सुंदर चित्रण किया है। जहाँ तक विद्यापति की उपासना पद्धति की बात आती है, कवि विद्यापति ने अपने आराध्यों की सगुणोपासना ही की है।

इसी प्रकार 'कीर्तन-घोषा' में भी भक्ति भावना का चित्रण हुआ है। मूलतः 'कीर्तन-घोषा' तो भक्ति प्रधान काव्य ही है। तत्कालीन पतनोन्मुख असम के सुधार हेतु शंकरदेव ने जो 'एकशरण हरि नाम धर्म' का प्रचार-प्रसार किया था, उसमें 'कीर्तन-घोषा' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भागवत पुराण के वेदांत सिद्धांत पर शंकरदेव का 'एकशरण हरि नाम धर्म' आधारित है। 'कीर्तन-घोषा' में शंकरदेव ने एकनिष्ठ भाव से कृष्ण रूपी सनातन ब्रह्म की उपासना को ही मोक्ष का परम उपाय बताया है। शंकरदेव के आराध्य कृष्ण रूपी ब्रह्म का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। उनका कृष्ण दैवीय और मानवीय गुणों के अपूर्व समन्वित रूप है। शंकरदेव ने भी अपने आराध्य कृष्ण रूपी ब्रह्म की भक्ति नवधा भक्ति द्वारा प्रदर्शित की है। कीर्तन-घोषाकार शंकरदेव ने श्रवण और कीर्तन को श्रेष्ठ स्थान देने के साथ-साथ नाम महिमा पर भी बल दिया है। नाम धर्म को युग धर्म बतानेवाले शंकरदेव ने कृष्ण भक्ति को ही श्रेयस्कर कहा है। कीर्तन-घोषा के प्रायः खण्डों में ही अर्चन, स्मरण, वंदन, पादसेवन, दास्य, सखित्व और आत्मनिवेदन इन सभी भक्ति रूपों का चित्रण द्रष्टव्य है। जहाँ तक शंकरदेव की उपासना पद्धति की बात है, उन्होंने प्रकृतार्थ में निर्गुण ब्रह्म की सगुण उपासना की है।

शृंगार के शिरोमणि कवि विद्यापति ने पदावली में प्रेम के आलम्बन रूप में राधा-कृष्ण का अपरूप शृंगार वर्णन किया है। राधा और कृष्ण के लौकिक रूप का वर्णन कवि ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों में

किया है। संयोग का वर्णन करना विद्यापति को अत्यंत प्रिय था। पदावली में चित्रित संयोग अवस्थाओं का चित्रण कवि ने रमकर किया। राधा-कृष्ण के रूप-सौंदर्य वर्णन, मुग्धा, सद्यस्नाता वर्णन, परस्पर मिलन, मान, रति चित्रण आदि सभी में विद्यापति ने शृंगार का उद्दाम चित्रण प्रस्तुत किया है। पदावली में नायक कृष्ण और नायिका राधा है, जिनका चित्रण कवि ने काव्य शास्त्रीय परम्परानुसार किया है। पदावली के नायक कृष्ण धीरललित, चतुर, शठ, मानी, उपपति तथा धृष्ठ रूप में चित्रित है तथा नायिका राधा मुग्धा, अज्ञातयौवना, अभिसारिका, मानिनी, विरहिणी आदि रुपों में चित्रित हुई है। मौलिक तथा नवीन उद्भावना शक्ति से विद्यापति ने पदावली में सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में शृंगार का चित्रण किया है। पदावली में चित्रित वियोग वर्णन में कवि ने भावात्मकता का परिचय दिया है। विरह की दस-दशाओं का चित्रण पदावली में अनुपम रूप में चित्रित हुआ है। साथ ही विद्यापति ने बारहमासा वर्णन कर पदावली में वर्णित वियोग को और अधिक उत्कृष्टता प्रदान की है। इस प्रकार शृंगार के अमर कृति के रूप में 'पदावली' एक उत्कृष्ट रचना है।

'कीर्तन-घोषा' मूलतः भक्ति प्रधान रचना है, किंतु इसके पाँच खण्डों में आदिरस शृंगार का चित्रण मिलता है। शृंगार शंकरदेव का केवल एक माध्यम रहा है, जिसकी परिणति केवल हरि भक्ति ही है। जिसके बारे में शंकरदेव ने 'कीर्तन-घोषा' में स्पष्ट कहा है। वैसे 'कीर्तन-घोषा' में शंकरदेव ने शृंगार के उभय पक्षों का अनूठा चित्रण केवल पाँच खण्डों में किया है। संयोग वर्णन में कवि शंकरदेव ने रूप-सौंदर्य चित्रण, काम-केलि का मनोमुग्धकारी चित्रण प्रस्तुत किया है। 'रासक्रीड़ा' में गोपियों संग कृष्ण की लीला और 'हरमोहन' खण्ड में मोहिनी के भुवनमोहन विचित्र सौंदर्य को देख काम पीड़ा से उत्तेजित भोलेनाथ शंकर के वर्णन में रति स्थायी भाव का चित्रण कर शंकरदेव ने संयोगावस्था का अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है। शंकरदेव ने 'कीर्तन-घोषा' में भक्ति के मूल आलम्बन रूप कृष्ण को लिया, जो आलोच्य कृति के नायक हैं। किंतु शंकरदेव ने किसी काव्य शास्त्रीय परम्परानुसार नायक-नायिका का चित्रण नहीं किया। 'कीर्तन-घोषा' में तो नायिका ही नहीं है। शंकरदेव के कृष्ण पूर्णकाम ब्रह्म का स्वरूप हैं, जो मानवी शरीर में स्वयं भगवान हैं। श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन ही आलोच्य कृति में चित्रित है। प्रसंगवश रुक्मिणी-हरण काव्य और रुक्मिणी-हरण नाटक में

चित्रित नायिका रुक्मिणी को कृष्ण की नायिका कह सकते हैं। 'कीर्तन-घोषा' में विरह का भी चित्रण हुआ है। 'गोपी-उद्धव संवाद' और 'रासक्रीड़ा' खण्ड में विरहिणी गोपियों की मार्मिक स्थिति का चित्रण शंकरदेव ने किया है। अंतर्स्पर्शी विरहिणी की प्रायः सभी दशाओं का चित्रों का वर्णन शंकरदेव ने किया है। इस प्रकार भक्ति के लिए शंकरदेव ने शृंगार के उभय पक्षों का चित्रण 'कीर्तन-घोषा' में किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन विवेचन के उपरांत हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि महाकवि विद्यापति और महापुरुष शंकरदेव क्रमशः हिन्दी और असमीया साहित्य के दो प्रमुख साहित्यकार हैं। दोनों के ही विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ ही उनके कृतित्व उन्हें सदैव अमर बनाए रखेंगे। दोनों ही अलग-अलग प्रांत के, अलग-अलग व्यक्तित्व और अलग-अलग परिवेश के होने पर भी दोनों की ही उत्कृष्ट कृतियों में क्रमशः 'पदावली' और 'कीर्तन-घोषा' में भक्ति भावना और आदिरस शृंगार के उभय पक्षों का चित्रण हुआ है। किंतु दोनों ही कृतियों में चित्रित भक्ति और शृंगार वर्णन में साम्य के साथ-साथ कुछ वैषम्य भी विद्यमान हैं। आलोच्य कृतियों में नवधा भक्ति के प्रमुख रूपों की समता परिलक्षित होती है, किंतु 'पदावली' में जहाँ सगुणोपासना एवं बहुदेवोपासना का चित्रण है, वहाँ 'कीर्तन-घोषा' में निर्गुणोपासना और अद्वैतवादी ब्रह्म की भक्ति की गई है। फिर एक ओर जहाँ शृंगार शिरोमणि विद्यापति की 'पदावली' में शृंगार का रमणीय चित्रण है वहीं दूसरी ओर बहुमुखी प्रतिभा के धनी शंकरदेव की 'कीर्तन-घोषा' में भी शृंगार के अनुपम चित्र प्रस्तुत है। अंतर इतना है कि 'पदावली' का शृंगार वर्णन शृंगार के लिए ही विद्यापति ने की थी और 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित शृंगार का चित्रण भक्ति के निमित्त मात्र के लिए शंकरदेव ने किया था।